ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 **PP. No.- 175-177**

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-19, No.-II, Issues-36, YEAR-April-June. 2025

पर्यावरण एवं विकास

डॉ0 कंचन कुमारी
शिक्षिका, समाजशास्त्र, उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, चिरौरा, नौबतपुर, पटना (बिहार) भारत

Received-13.05.2025, Revised-20.05.2025, Accepted-26.05.2025 E-mail : kanchan01976@gmail.com

सारांशः विकास की निरंतरता तभी रह सकती है, जब पर्यावरणी ह्रास कम–से–कम हो। पर्यावरण अनुकूल दशाएं और विकास के बीच निरंतर संतुलन विकास की प्रासंगिकता की ओर इशारा करती हैं। मानव पर्यावरण संबंधी संयुक्त राष्ट्र के 1972 में स्टॉकहोम में हुए सम्मेलन ने वर्तमान और भावी पीढ़ियों पर पर्यावरण की दशाओं और उसके प्रभावों से संबंधित कई अध्ययनों और प्रतिवेदनों के लिए रास्ते का निर्माण किया है। इस सम्मेलन ने पर्यावरण की रक्षा और सुधार करने संबंधी चिंता व्यक्त की है। यही कारण है कि 1980 के दशक की शुरूआत मे जर्मनी और उत्तरी अमेरिका में 'हरी–राजनीति' या 'पारिस्थितिकीय हरियाली' अथवा 'हरा–आंदोलन' के विकास ने भारत सहित समूचे विश्व में 'ग्रीन नेटवर्क' और 'ग्रीन मूवमेंट' को प्रोत्साहित किया है।

अब पर्यावरणात्मक स्थिति संबंधी सामग्री सामान्य रूप में और कुछ क्षेत्रों में जैसे वायु, भूमि, जंगल, पानी, समुद्री संसाधन आदि लोकप्रिय साहित्य के विभिन्न रूपों से 'वैज्ञानिक अध्ययनों' तक प्रचुर मात्रा में पहुंच गई है। 'विज्ञान एवं पर्यावरण केंद्र' से प्रकाशित भारत के पर्यावरण संबंधी प्रतिवेदन न केवल पर्यावरण के विभिन्न पहलुओं से संबंधित मूल्यवान सामग्री एवं सूचनाएं देते हैं, अपितु इनमें लोगों के आंदोलनों और प्रतिरोध का विवरण भी दिया जाता रहा है।

कुंजीभूत शब्द– पर्यावरण, विकास, मानव पर्यावरण, हरी–राजनीति, पारिस्थितिकीय हरियाली, हरा–आंदोलन, पर्यावरणात्मक स्थिति

1970 के दशक की शुरूआत में, जब अंतर्राष्ट्रीय समूह स्टॉकहोम में पर्यावरण संरक्षण को उच्च प्राथमिकता का विषय घोषित करने में कार्यरत था, उसी समय भारत में चिपको आंदोलन तत्कालीन उत्तर प्रदेश (अब उत्तराखंड) के पहाड़ी में विकसित हुआ। इस आंदोलन का सूत्रपात सरकार के उस निर्णय के विरुद्ध हुआ जिसमें ग्रामीणों को ईंधन तथा कृषि सामान बनाने के लिए वन में जाना प्रतिबंधित कर दिया और इलाहाबाद की एक खेल का सामान बनाने वाली कंपनी को व्यापारी लकड़ी (100 ग्राम) कटाइ के लिए अलकनंदा घाटी के वनों का ठेका दे दिया। तब स्थानीय लोगों ने निर्णय लिया कि व्यापारियों के शोषण से वन्य संसाधनों की रक्षा का सीधा एवं सरल तरीका है–वृक्षों से चिपकना। ऐसा करने से वे वृक्षों तथा वृक्ष काटने वाली आरी के बीच होंगे, जिससे वृक्षों का गिरना असंभव हो जाएगा। गांधी जी के सत्याग्रह दर्शन पर आधारित इस आंदोलन ने सर्वव्यापक अपील का रूप धारण किया तथा समस्त पर्वतीय क्षेत्रों में ऐसे ही आग्रहों का सूत्रपात हुआ। सुंदरलाल बहगुण, चंदी प्रसाद भट्ट, गौरा देवी जैसे सक्रिय कार्यकर्ताओं ने इस आंदोलन को प्रभावी नेतृत्व दिया। स्थानीय महिलाओं ने, जो सर्वाधिक तथा प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित थीं, इस आंदोलन में मुख्य भूमिका निभाई। गौरा के नेतृत्व में, रेनी प्रदेश की महिलाओं द्वारा, बहुत बड़े वन क्षेत्र को ठेकेदार की कुल्हाड़ी से बचाना, इस समय की प्रसिद्ध घटना बन गई। 1975 तक सरकार को वनों के वृक्ष कटाई के निजी ठेके देने की योजना पर प्रतिबंध लगाना पड़ा, तथा इसी वर्ष वनीय निरीक्षण हेतु, उत्तर प्रदेश वन निगम की स्थापना की गई।

'चिपमी आंदोलन' से प्रेरित होकर 1980 के पूर्वार्द्ध में दक्षिण भारत में 'ऑपिको आंदोलन' की शुरूआत हुई। आंदोलन उत्तर कन्नड़ क्षेत्र की एक ऐसी वन नीति के विरुद्ध प्रतिक्रिया थी जो व्यापारीकरण की दृष्टि से सागौन तथा यूकिलिप्टस के वृक्षों का अत्यधिक रोपण करना चाहती थी। ऐसा करने से न केवल स्थानीय लोगों को चारे तथा इंधन की समस्या होती, प्राकृतिक उष्णकटिबंधीय वनों को भी हानि पहुंचती, जहां मिश्रित प्रजाति की वनस्पति तथा वृक्ष ही मृदा अपरदन को रोक सकते हैं तथा संसाधनों का सरंक्षण कर सकते हैं। चिपकी आंदोलन की धारा पर, सालकानी के एक युवा ने 'अधिको छालवली' का आरंभ किया, जिसमें स्थानीय युवाओं ने पेड़ों से लिपटकर उसे काटने से बचाया। यह विरोध भी जल्द ही पूरे प्रदेश के दूसरे जिलों तक फैल गया, तथा इसने समस्त पश्चिमी घाट के ग्रामवासियों में जागरूकता की लहर उत्पन्न कर दी। मध्य–भारत के आदिवासी क्षेत्रों जैसे – बस्तर तथा झारखंड राज्य में भी व्यापारिक वृक्ष कटाई के विरुद्ध आंदोलन उभरे, जिनमें प्राकृतिक मिश्रित वनों के स्थान पर वाणिज्यिक वृक्षारोपण की सरकार की नीति का विरोध किया गया। यहां लोगों की यह मांग थी कि वन स्वामित्व एवं प्रबंध सरकार से लेकर स्थानीय समुदायों के हाथों में दिया जाना चाहिए तथा इन स्थानीय समुदायों को वनारोपण कार्यक्रम में सक्रिय सहयोग देना चाहिए।

एक और समस्या जिसके संबंध में व्यापक जन–आंदोलन उत्पन्न हुआ, वह है विशाल बांध, जिसके बनाए जाने से वन्य तथा कृषि दोनों ही प्रकार की भूमि का नाश होता है। विशाल बांधों की संरचना का प्रारंभिक नकारात्मक प्रभाव बड़ी जनसंख्या के बेघर होने से होता है। ये बांध पर्यावरण पर भी कुप्रभाव डालते हैं, यद्यपि ऐसी परियोजना का संबंध विकास योजना से होता है। बांधों के विरुद्ध सबसे पुराना आंदोलन हिमालय क्षेत्र में भागीरथी नदी पर बने टिहरी बांध के विरोध में आंदालन के प्रसिद्ध नेता सुदंर लाल बहुगुणा ने किया। अलकनंदा नदी पर बने विष्णुप्रयाग बांध के प्रति भी ऐसा ही विरोध चंडी प्रसाद भट्ट के नेतृत्व में हुआ।

केरल की मौन घाटी जलविद्युत परियोजना को भी जन विरोध के परिणामस्वरूप 1984 में परित्याग करना पड़ा। ऐसे ही कर्नाटक में बेदथी बांध के प्रति जनविरोध के कारण सरकार को परियोजना का परित्याग करना पड़ा। भारत का सबसे बड़ा व उच्च स्तरीय आंदोलन नर्मदा बचाओ आंदोलन है जो नर्मदा नदी पर सरदार सरोवर परियोजना के विरोध में शुरू हुआ। यह विरोध 1980 में, गुजरात में मेधा पाटेकर के नेतृत्व में शुरू हआ। यद्यपि यह आंदोलन इस परियोजना को पूर्णरूप से रोकने मे तो असफल रहा है, तथापि इसने विश्व बैंक तथा जापान की सरकार से मिल रही आर्थिक सहायता रद्द कराने में सफलता हासिल की है। ये सारे आंदोलन विकास एवं पर्यावरण के बीच तनाव एवं असंतुलन की स्थिति को प्रस्तुत करते हैं।

चिपको आंदोलन पर रामचंद्र गुहा और नर्मदा बचाओं आंदोलन पर अमिता बाविस्कर का अध्ययन उल्लेखनीय है। रामचंद्र गुहा अपने अध्ययन को कृषक प्रतिरोध से संबंधित मानते हुए उसके परिस्थितिकीय आयाम पर प्रकाश डालते हैं। यह अध्ययन हिमालय के क्षेत्र में परिस्थितिकीय परिवर्तनों और कृषक प्रतिरोध का तुलनात्मक दृष्टि से विश्लेषण करता है। यह अध्ययन प्रभुत्व की सरंचनाओं और सामाजिक विरोध के मुहावरों पर केंद्रित है। अमिता बाविस्कार ने मध्य प्रदेश की जनजातियों का अध्ययन कर प्रकृति के साथ

अनुरूपी लेखक / संयुक्त लेखक

उनके संबंधों की और राज्य द्वार प्रवर्तित 'विकास' के साथ उनके तनावों को उजागर किया है। वे पर्यावरणात्मक आंदोलन की सैद्धांतिक दृष्टियों के बारे में प्रश्न करते हुए कहती हैं कि ये भारतीय राज्य द्वारा प्रयोग किए गए प्रभुजन के 'विकास' के पैराडाइम पर जोर देते हैं जो पर्यावरणात्मक दृष्टि से विनाशात्मक हैं। ऐसे आंदोलन दावा करते हैं कि उनकी आलोचना विकास के द्वारा हाशिए पर फेंके गए व्यक्तियों की क्रियाओं में देखी जा सकती है।

ये व्यक्ति वहां के मूल निवासी हैं जो पूर्व में प्रकृति के साथ सामंजस्य के साथ रहते थे। जो संसाधनों को जीवनयापन के लिए बनाए रखते हुए प्रकृति के प्रति आदरभाव रखते थे। वे जनजातीय लोगों के सामाजिक सांस्कृतिक जीवन और 'विकास' के प्रति उनके प्रतिराध का विश्लेषण करती हैं।[1] बविस्कर भारतीय राज्य की विकास की नीति और उसके क्रियान्वयन का विश्लेषण करती हैं। ये बताती हैं कि विकास की नीतियों के कारण पिछले पांच दशकों में प्राकृतिक संसाधनों के नियंत्रण और उनके लाभकर उपयोग करने में गरीब लोगों की क्षमता में कमी आई है। वे कहती हैं–[2]

''स्वतंत्रता बाद से विकास के जिस मॉडल को स्वीकार किया गया, उसने मूल रूप से उस तरीके को उलट दिया जिसमें विभिन्न समूह प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करते हैं और उन्हें अपनाते हैं। स्वतंत्र देश द्वारा जो परिवर्तन लाए गएए उसने पर्यावरण संबंधी प्रतिस्पर्धी दावों के बारे में संघर्ष पैदा कर दिए। ये दावे केवल वस्तुओं के बड़े हिस्से पाने तक सीमित नहीं है, अपितु लाभ प्राप्त करने अथवा जीवन जीने हेतु या इन दोनों के किसी मिले–जुले रूप के लिए प्रकृति का मूल्यांकन और उपयोग करने से संबंधित है।''

यदि पश्चिम में, पर्यावरण एवं विकास के बीच के तनाव और परिणामस्वरूप ऐसे आंदोलन की बात करें तो वहां ये प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग, उत्पादक उपयोग और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण या बचाव पर जोर देते हैं। भारत में ऐसे आंदोलन प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग और वैकल्पिक प्रयोग के साथ–साथ नियंत्रण पर आधारित हैं। जयंत बंधोपाध्याय और वंदना शिवा ने लिखा है कि स्वतंत्र भारत में विकास की प्रक्रिया को पूरा करने के लिए प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के खिलाफ पारिस्थितिकीय आंदोलन में वृद्धि हुई। यह दोहन बाजार शक्तियों द्वार चलित है। इस प्रक्रिया ने गरीबों और गेर विशेषाधिकार प्राप्त वर्गों का जीना जटिल एवं कठिन कर दिया है। वे कहती हैं कि– भारत में पारिस्थितिकीय आंदोलन प्राकृतिक प्रक्रियाओं और बाजार अर्थशास्त्र पर आधारित विकास की अराजकता से बचाव की दो महत्त्वपूर्ण आर्थिकी के विनाश के प्रति विरोधों की अभिव्यक्ति है। ये आंदोलन – बाजार, गृहस्थी और प्रकृति के चारों ओर घूमते हैं और इनके बीच मौजूद एवं उत्पन्न विरोधाभासों को उजागर भी करते हैं। इसके एक अन्य पहलू स्थानीय समुदाय और शहर आधारित कार्यकर्त्ताओं के बीच उत्पन्न होने वाले संघर्ष एवं विवादास्पद स्थितियों की ओर इशारा करते हुए हर्ष सेठी कहते हैं कि[3]– इस सारे घटनाक्रम में पत्रकार सही प्रतिलिपि की मांग करते हैं, वकील लोग महत्त्वपूर्ण कानूनी बिंदुओं की खोज करते हैं ताकि वे कोर्ट में बहस कर सके और फिल्म निर्माता दर्शकगणों की रुचि को ध्यान में रखते हैं। इस स्थिति में हम आसानी से यह भूल जाते हैं कि जीवन निर्वाह की कठिन लड़ाई जमीनी स्तर पर लड़ी जा रही है।

उपर्युक्त उदाहरण एवं विश्लेषण पर्यावरण एवं विकास के बीच तनाव एवं असंतुलन की स्थिति को रेखांकित करते हैं। इसकी अगली कड़ी में उड़ीसा में कोरियाई स्टील कंपनी पोस्कां, महाराष्ट्र में लवासा प्रोजेक्ट, कुडनकुलम (तमिलनाडु) तथा जैतपुर (महाराष्ट्र) के परमाणु ऊर्जा रिएक्टर से संबंधित विवाद को देखा जा सकता है। तत्कालीन वन एवं पर्यावरण मंत्री जयराम रमेश ने पोस्को एवं लवासा प्रोजेक्ट के संदर्भ में पर्यावरण एवं वन मंत्रालय के रबड़ स्टांप क्लीरियन्स छवि को काफी हद तक सुधारा है। जयराम रमेश का स्पष्ट मानना था कि ऐसे किसी भी प्रोजेक्ट को क्लीरियन्स तभी मिल पाएगा, जब पर्यावरण से संबंधित सभी नियम एवं विनियमों का पालन किया जाएगा। उसके साथ हीं, वहां के स्थानीय लोगों द्वारा विरोध किया जा रहा था। यह भारत में सबसे बड़ा विदेशी पूंजी निवेश है। आंदोलनकारियों का कहना है कि विदेशी कंपनी पोस्को को लौह अयस्क बाजार मूल्य से काफी कम कीमत पर दिए जाने का प्रावधान है जबकि ऐसी ही भारतीय कंपनी को लौह अयस्क बाजार कीमतों पर दिया जा रहा है।[4]

इसी विवाद के बीच प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने कहा कि नियमों एवं विनियमों के कड़ाई से पालन का यह कतई मतलब नहीं है कि हम लोग पुनः लाइसेंस–परमिट राज में लौट रहे हैं। पर्यावरणीय ह्रास गंभीर समस्या जरूर है, लेकिन गरीबी, बेरोजगारी, भुखमरी, कुपोषण जैसी समस्याओं के समाधान के लिए आर्थिक विकास भी आवश्यक है। अतः इन दोनों के बीच संतुलन बनाने की जरूरत है और खनिजों के लिए खुदाई को रोका नहीं जा सकता। वर्तमान स्थिति यह है कि उड़ीसा सराकर इस प्रोजेक्ट के लिए धीरे–धीरे जमीन अधिग्रहण करने की प्रक्रिया में है।[5]

तमिलनाडु के कुडनकुलम तथा महाराष्ट्र के जैतपुर परमाणु ऊर्जा प्रोजेक्ट के समक्ष भी होने वाले विरोध विकास, पर्यावरण एवं मानवीय जीवन के मध्य द्वंद्व की ओर इशारा करते हैं। इनके समक्ष स्थिति प्रतिकूल इसलिए भी हो गई क्योंकि जापान के फूकोशिमा पावर प्लांट में होन वाली दुर्घटना लोगों के समक्ष दृष्टिगोचर हो रही थी।

भारत सरकार पर्यावरण बनाम विकास के विवाद में यद्यपि समाधान के प्रयास काफी पहले से करती रही है, तथापि और भी अधिक ध्यान देने की जरूरत है। 1988 की भारतीय वननीति के अंतर्गत 33 प्रतिशत क्षेत्रफल पर वनों का लगाया जाना सुनिश्चित किया गया है। 2006 में वन अधिकार अधिनियम लाया गया। भारत में जलवायु परिवर्तन के आठ मिशनों– राष्ट्रीय सौर ऊर्जा मिशन, ऊर्जा क्षमता बढ़ाने का मिशन, रहन–सहन के लिए मिशन, जल–संरक्षण मिशन, हिमालय के लिए मिशन, ग्रीन इंडिया मिशन, टिकाऊ कृषि मिशन तथा ज्ञान का रणनीतिक मिशन पर कार्य किया जा रहा है। इसका मिला–जुला असर यह हुआ कि वन क्षेत्र में प्रतिवर्ष 0.8 मिलियन हेक्टेयर की वृद्धि हो रही है और सालाना 10 प्रतिशत से अधिक ग्रीन हाऊस गैसों को निष्प्रभावी करने में मदद मिल रही है।[6] इसके साथ ही संयुक्त वन प्रबंधन नीति शुरू की गई, जिससे वनों के आसपास रहने वाले स्थानीयय समुदायों तथा वन–विभाग के बीच आपसी संबंध मजबूत हो पाए और उनके उत्तरदायित्व एवं अधिकारों को सुनिश्चित करते हुए वनों को संरक्षित किया जा सके।[7]

वन अधिकार अधिनियम8 के अंतर्गत वनों में तथा आसपास रहने वाले स्थानीय समुदायों को जमीन एवं जंगली उत्पादों पर अधिकार दिया गया है। इसके साथ ही, उन समुदायों को जंगल की सुरक्षा तथा प्रबंधन का भी अधिकार मिला है। अभी तक यह अधिकार केवल वन एवं पर्यावरण मंत्रालय के पास था। ऐसे अधिकार हैं जो केवल वनों की सुरक्षा तथा विस्तार को बढ़ाएगें, बलिक बढ़ रहे नक्सवादी आंदोलन को भी कमजोर करने का कार्य करेंगे। जंगली क्षेत्रों में नक्सली गतिविधियों के शुरू होने के कारणों में एक महत्वपूर्ण कारण वहां के स्थानीय समुदायों को जमीन तथा जंगली उत्पादों पर अधिकार का न होना भी रहा है। ऐसे विधिक प्रयास लाल गलियारा बनने की संभावना को क्षीण जरूर करेंगे।

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-19, No.-II, Issues-36, YEAR-April-June. 2025

इस प्रकार, पर्यारण बनाम विकास के विवाद में कई पहलुओं को शामिल किया जा सकता है। इसे पेड़ों की कटाइ रोकने वाले चिपको आंदोलन से लेकर परमाणु ऊर्जा परियोजना को लेकर विरोध करने वाली रणनीति के साथ–साथ नक्सलवादी आंदोलन की तीव्रता से जोड़ा जा सकता है। भारतीय वन नीति, 1988 ग्रीन इंडिया मिशन जैसी नीतिों द्वारा वनीय क्षेत्रों का विस्तार किया जा रहा है कि ताकि विकास की अन्य संभावनाओं की स्थिति में जंगल की कटाई विकास प्रक्रिया को अवरुद्ध न कर पाए।[8] खनिजों की अनिवार्य खुदाई से वनीय ह्रास को रोका नहीं जा सकता, केवल संतुलनकारी उपायों द्वारा इसके दुष्प्रभावों को कम किया जा सकता है। पोस्को परियोजना के समक्ष उभरे विवाद में ऐसी समस्याएं उभरी हैं।

दूसरी ओर, उभरती अर्थवयवस्था भारत जैसे देशों को ऊर्जा सुरक्षा के लिए भी प्रयास करने होगें। कोयला एवं पेट्रोलियम पदार्थों से निश्चित की जाने वाली ऊर्जा सुरक्षा की एक गंभीर सीमा है। यह अनवीकरणीय ऊर्जा स्त्रोत है और एक निश्चित अवधि के बाद इसकी उपलब्धता समाप्त हो जाएगी।

अतः इस चुनौती से निपटने के लिए भारत सरकार परमाणु ऊर्जा के साथ–साथ ऊजो के कई वैकल्पिक स्त्रोंतो पर भी ध्यान दे रही है। अतः आवश्यकता है कि विकास को सत्त बनाए रखते हुए पर्यावरण ह्रास या निम्नीकरण को निम्न–से–निम्न किया जाए।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. घनश्याम साह, भारत में सामाजिक आंदोलन सेज पब्लिकेशन्स. 2009, नई दिल्ली, पृ. 239–40.
2. वही पृ 241.
3. वही पृ 248.
4. The Econimic Times, 26-06-2011, Six years on, Posco's Orrissa project still a nonstarter.
5. The Indian Express, 20-032012, 'govt acquiring land for Posco.'
6. आर्थिक समीक्षा, 2011–12, पृ. 293.
7. http:envfor. Nic. in/division/forprt/ter:cifm.html.
8. www.forestrightact.com/what-is-this-act-about.

*****